श्री जवाहरलाल नेहरू : श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, जैसा कि इस चर्चा के प्रारम्भ में ही मैंने बताया था कि मैं एपलबी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों, दिये गये सुझावों और की गई आलोचना के विस्तार के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि हम चाहते हैं कि पहले सरकार सावधानी से इन पर विचार करे और बाद में उन्हें जानकारी और मार्ग प्रदर्शन के लिये संसद् के समक्ष रखा जाये।

मैं प्रारम्भ में ही कह दूँ कि हमें इस विषय पर संसद् सदस्यों द्वारा चर्चा किये जाने का स्वागत करने चाहिये। श्रीमान् ने सचिवों की एक समिति का सुझाव दिया। मैं उनका अभिप्राय नहीं समझ पाया। सचिव तो इन पर विचार कर ही रहे हैं। जो चीजें उन्हें सौपी जाती हैं वे उन पर विचार करते हैं और निश्चय ही वे अपनी सिफारिशों भी भेजेंगे। परन्तु ठीक तरीका यह है कि यदि समय हो तो हम कुछ संसद् सदस्यों से अनौपचारिक बैठकें करें जैसी कि योजना आयोग के लिये की गई थीं। परन्तु उसके लिये एक शर्त है कि भविष्य में काम में लाने के लिये प्रत्येक शब्द को अभिलेख में न रखा जाय क्योंकि उससे व्यर्थ ही समय और शक्ति नष्ट होती है। पर अनौपचारिक रूप से बैठ कर विभिन्न मामलों पर चर्चा करना सरकार के दृष्टिकोण से निश्चय ही बड़ा लाभदायक होगा। मैं इसकी प्रत्याभूति तो नहीं दे सकता—मैं नहीं जानता कि आगामी सत्र में हमें क्या कार्य करना है—परन्तु आशा है कि हम यह भी करेंगे।

इस प्रतिवेदन को इस दृष्टि से देखा गया है कि जैसे यह हमारे किसी विशेषाधिकार अथवा नियम पर प्रहार करती है और हमें अपना बचाव करना है। लोक-सभा यह देखेगी कि सरकार के विभिन्न विभागों, वित्त मंत्रालय आदि की बड़े कठोर शब्दों में आलोचना की जाती है, मुझे और मेरे सहयोगियों को उस पर कोई आपत्ति नहीं है। हम चाहते हैं कि कड़ी से कड़ी आलोचना की जाये। इसका आशय यह नहीं है कि हम उससे सहमत हैं। उससे सहमत होना या न होना अलग बात है पर हम आलोचना का स्वागत करते हैं। इसीलिये हमने इस बार और पिछली बार जब डा० एपलबी यहां आये थे, इसका स्वागत किया था।

इसमें सन्देह नहीं कि डा० एपलबी को न केवल अमरीका की बल्कि निश्चय ही योरोप की और अन्य देशों की प्रशासनिक प्रक्रियाओं का काफी अनुभव है। बहुत समय तक उन्हें प्रशासन सम्बन्धी मामलों का विशेषज्ञ माना जाता रहा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा है वह ठीक या अच्छा ही है। परन्तु वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें अपनी राय व्यक्त करने का हक है और उनकी राय पर ध्यान पूर्वक विचार किया जाना चाहिये।

लगभग तीन या चार वर्ष पूर्व वह पिछली बार यहां आये थे और जो प्रतिवेदन उन्होंने उस समय दिया था वह बहुत समय पश्चात् लोक-सभा के समक्ष रखा गया था और राज्य सरकारों को भेजा गया था। वस्तुतः उस प्रतिवेदन से हमें बहुत लाभ हुआ और उस प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् वित्त मंत्रालय और अन्य मंत्रालयों की आन्तरिक प्रक्रियाओं में कुछ सुधार किये गये। मेरे विचार से किसी हद तक एपलबी प्रतिवेदन पर चर्चा किये जाने के कारण ही संगठन और रीति विभाग आरम्भ किया गया था, और वह बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। वस्तुतः समय समय पर परिवर्तन किये जाते रहे हैं। यह समूचे प्रशासन में व्याप्त है और जो परिवर्तन किये गये हैं अथवा दिन प्रति दिन किये जाते हैं वे हमारी भलाई के लिये ही हैं।

इसके पश्चात् वह दूसरी बार लगभग दो वर्ष हुए तब आये थे और उन्होंने कुछ टिप्पणियां की थीं—उन्होंने कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया या नहीं यह मुझे ठीक से याद नहीं है।

तीसरी बार वह हाल ही में आये। कुछ समय के लिये वह न्यूयार्क राज्य के वित्त मंत्री रहे हैं। वहां उन्हें वित्त मंत्री नहीं कहा जाता है परन्तु न्यूयार्क राज्य में कार्य वह यही करते हैं। वह

वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में कार्य करते हैं, और यह मामले होते भी बड़े हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें हमारे वित्तीय मामलों का अन्तिम रूप से निर्णय करने की अर्हता प्राप्त है। परन्तु इससे किसी हद तक क्षमता और अनुभव का अवश्य पता चलता है। वह सेवा निवृत्त होने वाले हैं और किसी हद तक वह अपने जीवन का कार्य समाप्त कर चुके हैं, उन्होंने प्रशासनिक प्रक्रिया और वित्तीय तथा अन्य प्रक्रियाओं के बारे में काफी कुछ बताया है। हमने उनकी यात्रा का स्वागत किया और उससे काफी लाभ उठाया है।

उनकी आलोचना का उद्देश्य यह रहा है कि आज हम भारत में अपनी आवश्यकताओं को कैसे पूरा कर सकते हैं। हमारे देश को सामाजिक और अन्य मामलों को शीघ्र हल करना है, औद्योगीकरण करना है और आर्थिक क्षेत्र के प्रत्येक अवस्था में प्रगति करनी है। यह सब कुछ कैसे किया जाये? उन्होंने यह बताया है कि हम तत्कालीन प्रशासन पद्धति और अंग्रेजों से उत्तराधिकार में प्राप्त पद्धति का अनुसरण करते हुए यह सब कार्य सन्तोषजनक ढंग से नहीं कर सकते हैं। उन्होंने व्यक्तियों की सराहना की है और उन्होंने यह भी कहा है कि भारत के प्रशासन के स्तर की तुलना संसार के किसी भी देश से की जा सकती है। उन्होंने कहा कि प्रशासनिक दृष्टिकोण और प्रशासन की शुद्धता के दृष्टिकोण से—यद्यपि कुछ विभागों में भ्रष्टाचार है—भारत सरकार के चोटी के १२ देशों में से एक है। इसके पश्चात् उन्होंने बताया कि हमारी वर्तमान पद्धति पहली किस्म के राज्य के लिये ठीक थी परन्तु इस से शीघ्र उन्नति नहीं हो सकती है और बहुत सी रुकावटों और प्रतिबन्धों के कारण अत्यधिक विलम्ब होता है यह उनकी पहली आलोचना थी।

जब वह दूसरी बार आये तो उन्होंने इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि उनकी आशा से अधिक तीव्रता से प्रगति हुई थी, इसका यह भी कारण था कि कुछ परिवर्तन किये गये थे और उनके विचारानुसार प्रशासनिक शासनतंत्र ने अधिक परिश्रम किया था। उन्होंने इस अवसर पर यही कहा कि उन्होंने प्रगति इसलिये की क्योंकि वह श्रमता से अधिक कार्य करते रहे, परन्तु सदा वे ऐसा नहीं करते रह सकते हैं। एक स्थायी और शीघ्र प्रगति करने वाली पद्धति के विकास के लिये आपको कुछ परिवर्तन करने होंगे। डा० एपलबी की आलोचना का सारांश यह है कि इस प्रशासनिक व्यवस्था की गति अधिक होनी चाहिये। उनकी आलोचना की पृष्ठभूमि समूचा संसार है परन्तु मुख्यतः यह अमरीकन पृष्ठभूमि है और वह उसे पसन्द भी करते हैं। मैंने डा० एपलबी का प्रतिवेदन एक प्रसिद्ध अंग्रेज प्राध्यापक को, जिसकी पृष्ठभूमि स्पष्टतः इंग्लैण्ड की थी, वह श्री हीरेन मुकर्जी के विश्वविद्यालय, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के थे, दिखाया था और उन्होंने डा० एपलबी की अमरीकन पृष्ठभूमि को पसन्द नहीं किया था।

डा० एपलबी अथवा आक्सफोर्ड के दूसरे व्यक्ति ने क्या कहा इससे अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। वे दोनों ही रुचिकर हैं और लाभदायक भी हैं क्योंकि वे दोनों प्रस्तुत प्रश्न को विभिन्न दृष्टिकोणों से देख रहे हैं। हमारी रुचि किस बात में है? हम यह नहीं चाहते कि किसी ढांचे विशेष को ही रखा जाये, अथवा दूसरे प्रशासनिक ढांचे को बदल दिया जाये हम तो केवल यही चाहते हैं कि कार्य तेजी से तथा यथासम्भव शीघ्रता से हो। हम चाहते हैं कि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का कार्य क्षमता और तेजी से और प्रशासन को शुद्ध रखते हुए आगे बढ़े। हमारा उद्देश्य केवल यही है। अतः हम सभी सुझावों का स्वागत करते हैं चाहे वह कहीं से भी क्यों न प्राप्त हुए हो। हम उनका अपने और संसद् के अनुभव के आधार उनकी जांच करेंगे और पद्धति में सुधार करने की चेष्टा करेंगे। यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि उसकी प्रशासन व्यवस्था दोष रहित है। पूर्ण रूप से दोष रहित तो कोई बात भी नहीं होती है। वह बात स्वीकार की जा चुकी है और मेरा विचार है कि सभी इसे स्वीकार करेंगे कि हमारी प्रशासन व्यवस्था के ढांचे ने जो मूलतः अन्य प्रयोजनों को सामने रखते हुए तैयार किया गया था, अपने आपको हमारी आशा से अधिक मुचारूप से भारत में हुए परिवर्तन के अनुकूल बना लिया है। मैं तो यह कहूंगा कि प्रशासन व्यवस्था ने, उसके अधिकांश भाग ने अपने आपको बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है। परन्तु वह केवल अनुकूलन का ही प्रश्न नहीं है बल्कि उस से भी अधिक महत्व का विषय है।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

इस सभा में कई बार यह आलोचना की जाती है और सम्भव है कि वह ठीक भी हो, कि सभी सरकारी दफ्तरों में कर्मचारियों की संख्या, मंत्रियों, उपमंत्रियों और सभा सचिवों की संख्या बढ़ रही है। परन्तु कार्य में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। काम कितना बढ़ गया है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हम इसे पर्याप्त मात्रा में करते हैं या नहीं इसका निर्णय मुझे नहीं करना है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि काम बहुत बढ़ गया है। काम दोगुना अथवा तीन गुना नहीं बढ़ा है बल्कि यह पहले से ५० अथवा १०० गुना बढ़ा है। इससे प्रत्येक व्यक्ति पर बहुत बोझ पड़ता है; काम बढ़ रहा है; कर्मचारी कम हैं; प्रशिक्षित कर्मचारी कम हैं। स्पष्ट है कि जिस प्रकार का काम हमें अब अधिक से अधिक करना है उसके लिये प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता है। हमें प्रशिक्षित प्रविधिज्ञों, प्रशिक्षित वैज्ञानिकों, प्रशिक्षित इंजीनियरों, प्रशिक्षित प्रशासनिक पदाधिकारियों तथा अन्य की आवश्यकता है। हमें निरन्तर इस कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। हमारी आज की बड़ी समस्याओं में से एक जन शक्ति का प्रश्न है। देश की जन शक्ति को यह वर्तमान तरीके से नहीं किया जा सकता है, जिसमें लोग कालेजों और विश्वविद्यालयों में एक अव्यवस्थित रूप में भर्ती हो जाते हैं और फिर बाद में बिना रोजगार के भटका करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार के काम के लिये आवश्यकता होती है, वे उसके उपयुक्त नहीं होते हैं। हमारे पास बहुत अधिक कार्य है और उसके लिये व्यक्तियों को प्रशिक्षित करना है और किसी भी प्रशिक्षित व्यक्ति को भटकने नहीं देना चाहिये। निस्सन्देह, हम आज से कहीं अधिक संख्या में इन व्यक्तियों को प्रशिक्षित करेंगे। इतना ही नहीं, हमें दूसरे देशों के साथ प्रतियोगिता भी करनी है।

मुझे बताया गया है कि सोवियत संघ में प्रतिवर्ष ७५,००० इंजीनियर प्रशिक्षित किये जाते हैं। हम ७५,००० इंजीनियर प्रशिक्षित न कर सकें, लेकिन ५,००० वा १०,००० को तो प्रशिक्षित कर ही सकते हैं। हमें यह करना पड़ेगा। मैं समझता हूँ कि यह संख्या भी बढ़ जायेगी। मैंने आज ही पढ़ा कि सोवियत संघ में २,५०,००० विज्ञान के अध्यापक हैं, केवल विज्ञान के ही। यही बात यह बताती है कि वहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकीय तथा अन्य चीजों को कितना अधिक महत्व दिया जाता है। प्रशासन का समूचा तरीका ही बदलता जा रहा है। आधुनिक जीवन की समूची प्रवृत्ति में ही परिवर्तन हो रहा है। हमारी प्रशासकीय पद्धति को भी अपने-आपको उसी के अनुसार ढालना पड़ेगा। अब अधिक दिनों तक वह अपने पुराने तरीके से नहीं चल सकती है।

सोवियत संघ और अमरीका में वैसे कोई समानता नहीं है। और एक प्रकार से तो वे दूसरे के विपक्षी हैं, लेकिन उन में भी एक या कई बातों में समानता है। अन्य बातों के अतिरिक्त उन में इस एक बात में अवश्य समानता है कि उन दोनों देशों में एक जीवन-शक्ति है, परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढाल लेने की शक्ति है, उन्हें परिवर्तन हो रहे वर्तमान संसार का ज्ञान है और वे अपने-आपको उसके उपयुक्त बना रहे हैं, वैज्ञानिक, औद्योगिक और प्रौद्योगिक तथा अन्य रूप से अपने-आपको उसके उपयुक्त बनाने का प्रयास कर रहे हैं। मैं कह सकता हूँ कि अन्य सभी देश उनसे पिछड़ गये हैं। इसलिये, आप देखेंगे कि अमरीका और सोवियत संघ के औसत व्यक्ति भारत की जो आलोचनाएँ करते हैं वे एक ही प्रकार की होती हैं। अमरीकी लोगों को हमारे देश में लग जाने वाले प्रतिबन्ध और संतुलन पसंद नहीं आते हैं। वे तो केवल यही चाहते हैं कि कार्य आगे बढ़े। अमरीकी कहता है: 'यह सब क्या है?' प्रतिबन्ध लगाना और सन्तुलन कायम करना तो प्रत्येक सरकार के लिये आवश्यक होता है, लेकिन वह कहता है कि "इस देश में वह बहुत अधिक है।" हमारे देश में, सोवियत संघ से बहुधा विशेष व्यक्ति ही आते हैं, लेकिन उनका भी कहना यही है कि इस प्रकार कार्य सम्पन्न नहीं कराया जा सकता है और इन प्रतिबन्धों और सन्तुलनों तथा शर्तों से उसमें रोड़ा अटकता है। वे कहते हैं कि आप सोवियत संघ की भांति अपने यहाँ भी महाप्रबन्धक को ही सारे कार्य का भार क्यों नहीं सौंप देते? सैद्धांतिक रूप से यह ठीक नहीं है। सैद्धांतिक रूप से तो संसद् ही सर्वोच्च है, और उसे सर्वोच्च रहना ही चाहिये। देश में लोकतन्त्रात्मक ढांचा रहना ही चाहिये। हमें अपने संविधान के मूलभूत आधार को ही मानकर चलना चाहिये। इससे किसी को भी इन्कार नहीं है। प्रतिबन्ध तो होने चाहिये। महालेखा परीक्षक होना चाहिये।

यह सब तो ठीक है। लेकिन, संविधान से कोई ठोस परिणाम निकालने की समस्या एक व्यावहारिक समस्या है, सैद्धांतिक समस्या भर नहीं है। इसलिये, हम आलोचनाओं का स्वागत करते हैं। कई आलोचनायें हमें प्राप्त भी हुई हैं।

यहां मेरे जो मित्र इस्पाब के कारखानों के निर्माण के संबंध में कार्य कर रहे हैं, उनसे सोवियत की जनता लगातार यही कहती रहती है कि इसे शीघ्रता से किया जाना चाहिये। उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन किया जाना चाहिये, यह किया जाना चाहिये वह किया जाना चाहिये। हमें आगे बढ़ना है। हम दूसरों की प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं। यह एक विचित्र सी बात है कि सोवियत संघ और अमरीका के प्रशासनिक ढांचों में इतना भारी अन्तर होते हुए भी, हमारे संबंध में उनकी आलोचनायें एक ही प्रकार की होती हैं।

इस संबंध में, मैं यह भी बता दूँ, और अपने मित्र तथा सहयोगी श्री मुर्कजी का ध्यान मैं इसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि वे सदा ही नौकरशाही का उल्लेख करते रहे हैं और कहते रहे हैं कि इस प्रकार की नौकरशाही व्यवस्था मानवीय भावनाओं को कुचल देती है, आदि-आदि। मुझे यह नहीं मालूम कि सोवियत संघ के वर्तमान शासकों को वह क्या कहेंगे। मेरे विचार से तो उन्हें नौकरशाही के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। वहां का शासन तो नौकरशाही का निचोड़ है, और मैं कह सकता हूँ कि हमारे देश में समाजवादी प्रगति जितनी ही अधिक होगी, हमारे यहां उतनी ही नौकरशाही बढ़ती जायेगी। समाजवाद का यही अवश्यम्भावी परिणाम है। यह बिलकुल स्पष्ट है। यह दूसरी बात है कि वह एक अधिक अच्छी प्रकार की नौकरशाही हो। लेकिन वह है नौकरशाही ही, और आज की पेंचीदा हालत में नौकरशाही आवश्यक भी है, फिर चाहे वह भारत हो, या अमरीका या सोवियत संघ हो।

अमरीका में, पहले की अपेक्षा अब कुछ कम नौकरशाही है। पिछले काल में, उनके यहां बहुत अधिक नौकरशाही थी, जिसे 'विजित राजनीतिक दल से भी सभी पद आदि छीन लेने की प्रणाली' कहा जाता था। इसका अर्थ यह है कि जब भी कोई नया प्रशासन सत्तारूढ़ होता है तो वह गांव के स्थानीय पहले के पोस्ट मास्टर तक को निकाल देता है। पता नहीं कि अब भी वहां यह सब कुछ किया जाता है या नहीं, लेकिन पहले किया जाता था। प्रत्येक चीज में परिवर्तन कर दिया जाता है और नये दल के व्यक्ति रख दिये जाते हैं। सोवियत संघ प्रणाली में भी कभी-कभी एकाएकी बहुत अधिक पदों से व्यक्तियों को हटा दिया जाता है, मुझे उसका पूरा ब्योरा मालूम नहीं है।

लेकिन, इससे बात यही निकलती है कि नौकरशाही से बचा नहीं जा सकता है। यदि आप चाहते हैं तो उस में सुधार कर सकते हैं, और आपको यह करना भी चाहिये। लेकिन वह नौकरशाही तो रहती ही है। पिछले जमाने में, हम नौकरशाही का अर्थ समझते थे भारतीय सिविल सर्विस और कुछ अन्य सेवायें। हां, अब वह धारणा नहीं रही है। अब भारतीय सिविल सर्विस का वह पुराना रूप क्रमशः मिटता जा रहा है; केवल कुछ ही व्यक्ति बचे हैं। दूसरे लोग आ रहे हैं और अब एक नये वातावरण में भारतीय प्रशासनिक सेवा का जन्म हुआ है और उसे परिपक्वता दी जा रही है। लेकिन इसके अतिरिक्त, स्वाभाविक रूप से, इस तथाकथित नौकरशाही पर एक नया आक्रमण हो रहा है, और वह आक्रमण है प्रविधिक व्यक्तियों का— इंजीनियरों, प्रौद्योगिक व्यक्तियों आदि का। वे हमारी इस पूरी व्यवस्था में एक बड़ी संख्या में आते जा रहे हैं और आगे इससे भी अधिक संख्या में भर्ती होंगे। आपको इन व्यक्तियों पर निर्भर करना पड़ेगा, आपको उन्हें अधिकाधिक प्रशिक्षण देना पड़ेगा। आगे चल कर समय आयेगा जब आप उनका हजारों की संख्या में नहीं लाखों की संख्या में उपयोग करेंगे, और आपकी सरकार तब तो इस प्रकार अधिकाधिक रूप में नौकरशाही बनती जायेगी। हां, तब नियंत्रण आदि का भी हजारों और लाखों तरीके होंगे।

अब फिर, हमारा कार्य बहुत अधिक पेंचीदा और विभिन्न प्रकार का होता जाता है। संसद् का कार्य इतना अधिक कठिन होता जाता है कि संसद् के लिये उसके साथ कदम से कदम मिला कर चलना कठिन हो रहा है। यदि संसद् उसके साथ-साथ चलने में असमर्थ है और इस के बावजूद भी

के पुनरीक्षण सम्बन्धी डा० एपलबी के प्रतिवेदन पर विचार करने का प्रस्ताव

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

उसको नियंत्रण करना ही है तो उसे समूचे प्रशासन में से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण स्थानों को चुनकर उन पर ही अपनी सारी शक्ति लगानी आवश्यक है, उसे यह देखना है कि वे कौन से महत्वपूर्ण विषय हैं जिन्हें उसे अपने नियंत्रण में रखना है और जिन पर प्रतिबन्ध लगाना अत्यावश्यक है और किन अपेक्षाकृत कम महत्व के विषयों पर उसे व्यर्थ में समय नहीं गंवाना है। अन्यथा महत्वपूर्ण मामले रह जाते हैं और ध्यान छोटे-छोटे कम महत्व के मामलों पर ही लगा रहता है।

यदि माननीय सदस्य इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली के विकास के इतिहास का स्मरण करें, तो वे देखेंगे कि इंग्लैंड में १९ वीं शताब्दी की संसद् अपने आज के वर्तमान स्वरूप से बिलकुल ही भिन्न थी। यद्यपि वह कोई बहुत लोकतन्त्रात्मक संसद् नहीं थी, मेरे कहने का आशय यह है कि उसमें मताधिकार बहुत ही सीमित था, तथापि इस एक तथ्य के अतिरिक्त, उस संसद् के पास पर्याप्त अवकाश रहता था। गैर-सरकारी सदस्यों के पास काफी अधिक समय रहता था। वह गैर-सरकारी सदस्यों की संसद् थी। सरकार शायद ही कभी कोई महत्वपूर्ण सामाजिक विधान प्रस्तुत करती थी। हां, कभी कभी तो वह भी विधान प्रस्तुत करती थी, लेकिन बहुत ही कम और वह भी कभी-कभी। संसद् का पूरा भार गैर-सरकारी सदस्यों पर ही रहता था।

क्रमशः संसद् और संसद् में कार्य करने वाली सरकार का कार्य इतना अधिक बढ़ गया है कि ब्रिटिश संसद् में भी, अन्य संसदों की भांति, बेचारे गैर-सरकारी सदस्य को कोई समय ही नहीं मिल पाता है। सर्वाधिक महत्व की बातों को संसद् सिद्धांत के आधार पर किये गये किसी वास्तविक निर्णय के आधार पर ही निर्णीत करती है और उसके बाद उसे किसी अन्य निकाय को सौंप देती है। एक उदाहरण लीजिये। १९ वीं शताब्दी और २० वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल की संसदों में दो मुख्य दल हुआ करते थे और वे उनमें बिलकुल विभाजित रहती थीं। दो दल थे—एक मुक्त व्यापार के पक्ष में था और दूसरा विपक्ष में था। महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में पुराने उदार और कन्जरवेटिव दलों में सदा ही मतभेद रहता था। लेकिन बाद में, जब संरक्षण की नीति अपना गई, और सौ वर्षों से चली पुरानी ब्रिटिश नीति को त्याग दिया गया, तो एक आश्चर्यजनक बात हुई। इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाने पर और व्यापार बोर्ड को सूचियों और शुल्कों आदि के, ब्योरा तैयार करने के लिये कहे जाने पर, संसद् को विचार करने का समय ही नहीं मिल पाया, उसके पास समय का अभाव हो गया। उसने केवल यही निर्णय किया कि हम संरक्षण की नीति को रखेंगे। इसके बाद का सारा कार्य व्यापार बोर्ड के अधिकारियों ने ही किया।

इसलिये परिस्थिति के वशीभूत हो कर संसद् इन सभी कार्यों को नहीं कर सकती है क्योंकि कार्य बहुत अधिक है। भारत में जब एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों राज्य निगम होंगे तो स्पष्ट है कि उस समय संसद् यदि चाहे तो भी उस के पास इनमें से प्रत्येक को जांच आदि करने के लिये समय नहीं होगा। उस के पास शक्ति है, और यदि वह चाहे, तो किसी भी समय जो वह चाहे कर सकती है। लेकिन, आपको अन्य तरीके निकालने पड़ेंगे जिससे कि पर्याप्त प्रतिबन्ध लगाये जा सकें और साथ ही अग्रतर प्रगति के लिये प्रोत्साहन दिया जा सके।

यह वास्तविक समस्याएँ हैं, जो केवल एपलबी प्रतिवेदन के कारण ही पैदा नहीं हो गई हैं। ये सभी समस्याएँ वर्तमान परिस्थिति के कारण ही पैदा हुई हैं, जीवन के तथ्यों के कारण ही पैदा हुई हैं और हमें उनका सामना करना है। और जैसे जैसे हम अनुभव प्राप्त करते जाते हैं और परिवर्तनों की आवश्यकता देखते जाते हैं, हमें उन पर सावधानी से विचार करना है, उन के संबंध में चर्चा करनी है और अपनी प्रशासकीय प्रणाली को या कहिये कि तृतीय प्रणाली को धीरे-धीरे क्रमशः परिवर्तित करना है।

श्री गाडगील ने कहा है कि वे सरकारी प्रस्ताव चाहते हैं। मुझे आशा है कि अगले सत्र में अवश्य ही इस संबंध में सरकार के विचार प्रस्तुत किये जायेंगे। लेकिन, ये सभी कोई एक एकीकृत प्रस्ताव के रूप में नहीं हैं। इनमें बहुत सी चीजें हैं, और वे सभी निरन्तर तथा क्रमशः परिवर्तित होती जा रही हैं।

उदाहरण के लिये, पिछले एक-दो वर्षों में, हम क्रमशः अधिकाधिक रूप में अधिकार का प्रत्यायोजित करते रहे हैं। हमने उस सिद्धांत को एक मोटे तौर पर मान लिया है। लेकिन शायद हम उसे उतनी तेजी से इस कार्य को नहीं कर रहे हैं, जितनी तेजी से कि हमें करना चाहिये था। वित्त मंत्रालय जिसके बारे में केवल डा० एपलबी ने ही नहीं बल्कि बहुधा भारत सरकार के अन्य मंत्रालयों ने भी काफी शिकायतें की हैं, अब अपने अधिकार को प्रत्यायोजित कर रहा है और आन्तरिक वित्तीय सलाहकारों की प्रणाली को लागू कर रहा है। इसका आशय यह है कि प्रत्येक मामले को वित्त मंत्रालय के पास भेजने के स्थान पर, संबंधित मंत्रालय के पास वित्त मंत्रालय का कोई एक सलाहकार बातचीत कर लेता है और हम मामले को चलता कर देते हैं। इससे विलम्ब नहीं होता है। केवल बहुत ही महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में मंत्रालय से बातचीत करना आवश्यक है। हम इसी प्रकार के परिवर्तन कर रहे हैं। हो सकता है, कि हम उतनी तेजी से प्रगति त कर रहे हों जितनी तेजी से कि हमें करनी चाहिये।

स्वायत्त निगमों और अन्य निकायों को अधिकार के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में भी, हमारा विचार यही है कि यह किया जाना चाहिये और यथासम्भव प्रतिबन्धों और नियन्त्रणों को लागू करने का प्रयास करना चाहिये। इसलिये यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर हां या न में दिया जाय, यह उसकी जांच करने और उसमें ऐसे परिवर्तन करने का प्रश्न है जो वांछनीय मालूम पड़े और जिनके करने में वित्तीय या अन्य किसी प्रकार का कोई खतरा न हो ऐसे परिवर्तन क्रमशः करते जाना चाहिये। देखना यह चाहिये कि उनके करने में कोई गम्भीर वित्तीय या अन्य खतरे न हों। हम इस विषय में इसी प्रकार कार्य कर रहे हैं और कार्य करते रहेंगे। मैं समय समय पर सभा को इससे सम्बन्धित कार्यवाही से अवगत कराता रहूंगा। हम, वास्तव में, तमाम प्रश्नों के उत्तर में सदस्यों को इस विषयों के सम्बन्ध में बताते ही रहे हैं, और मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अगले सत्र में मुझे आशा है कि हम सदस्य की इच्छानुसार अधिक से अधिक संसद सदस्यों से इस विषय के सम्बन्ध में एक अनौपचारिक चर्चा का आयोजन करने में समर्थ होंगे। प्रश्न कुछ सदस्यों को चुनने का नहीं है। जितने भी सदस्यों की इस विषय में रुचि है और चर्चा में भाग लेना चाहते हैं, वह सम्मिलित हो सकेंगे। हम उन तमाम विषयों के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे जो प्रशासकीय प्रणाली और अन्य मामलों के सम्बन्ध में एपलबी प्रतिवेदन में उठायें गये हैं। वास्तव में इससे सम्बन्धित अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी चर्चा की जायेगी।

लेकिन, मैं एक बार फिर कहूंगा कि हमें डा० एपलबी द्वारा प्रयुक्त कड़ी भाषा को देखकर चिड़चिड़ाता नहीं चाहिये। यदि मुझे तब इसका पूरा विश्वास होता कि उस प्रतिवेदन को संसद के सामने रखा जायेगा, तो डा० एपलबी ने दूसरे ही प्रकार की भाषा का प्रयोग किया होता। लेकिन हम चाहते थे कि हमारे सरकारी कर्मचारियों—वरिष्ठ पदाधिकारियों—को कुछ सावधान कर दिया जाय। उन्होंने मुझसे यह कहा भी था। वास्तव में, वे अपने प्रतिवेदन की भाषा में परिवर्तन करने को तैयार भी थे। यदि प्रतिवेदन को प्रकाशित किया जाना था तो वे इसकी भाषा में परिवर्तन कर देना चाहते थे। लेकिन मैंने उनसे इसे इसी रूप में रहने देने के लिये कहा था। मैंने कहा था कि यह इस रूप में काफी ठीक है। इसीलिये, इसमें परिवर्तन नहीं किया गया है। लेकिन हमें इसकी भाषा के सम्बन्ध में नहीं, बल्कि उस बड़ी समस्या के सम्बन्ध में सोचना चाहिये जो हमारे अपने और अन्य देशों के सामने भी है। निस्सन्देह, मैं भली प्रकार जानता हूँ कि वह एक समस्या है जिसे आज इंग्लैंड को भी हल करना है। हां, इंग्लैंड की समस्या बिल्कुल हमारी समस्या जैसी नहीं है, लेकिन वह हमारी समस्या से सर्वथा भिन्न भी नहीं है। आखिर, हमारे देश की असैनिक सेवायें एक प्रकार से इंग्लैंड के ही नमूने पर तो ढाली गयी थीं। उनको भी उन्हीं कठिनाई का सामना करना पड़ा था, जो हमारे सामने आयी थी। हां, यह हो सकता है कि उनको हमसे अधिक अनुभव था और उनका देश भी छोटा है, जो भी हो, लेकिन फिर भी उनकी अपनी समस्यायें हैं। मैं जानता हूँ कि यह भी ठीक है कि सोवियत संघ भी इस समस्या को हल करने में जुटा हुआ है कि प्राधिकार को किस सीमा तक प्रत्यायोजित किया जाये और किस सीमा तक न किया जाये। मैं जानता हूँ और मैं जब सोवियत संघ में गया था तो उन्होंने हमें भी बताया था कि हमने प्राधिकार का प्रत्यायोजन न कर के एक भारी भूल

[श्री जवाहरलाल नहरू]

की थी, और वे अब भी केवल इसीलिये प्राधिकार का अधिकाधिक प्रत्यायाजन करते जा रहे हैं क्योंकि उन्होंने अनभव कर लिया है कि प्रत्यायोजन न करने से उनकी शीघ्रगामी व्यवस्था बार बार प्रतिबन्धित हो पाती थी और उसकी गति रुक जाती थी। हां, यह अवश्य है कि उन्होंने एक बड़े ही सूक्ष्मपर्यवेक्षण की व्यवस्था की है। वह तो प्रत्येक सरकार करती है। लेकिन, प्रत्येक पेचीदा और विशाल प्रशासन प्राधिकार को प्रत्यायोजन किये बिना अपना कार्य नहीं चला सकता है। मैं इस सभा को एक बार फिर स्मरण दिलाता हूँ कि संयुक्त सचिवों, उपसचिवों और सहायक सचिवों की जिस प्रकार के सरकार के सम्बन्ध में माननीय सदस्य इतना कुछ कहते हैं, बिल्कुल उसी प्रकार की सरकार आज अमरीका और सोवियत संघ दोनों में ही वर्तमान हैं।

एक सदस्य की रिहाई

उपाध्यक्ष महोदय : मुझे सभा को सूचित करना है कि मुझे अहमदाबाद नगर के जिला पुलिस अधीक्षक ने सूचना दी है कि अहमदाबाद के न्यायिक दण्डाधिकारी ने लोक सभा के सदस्य श्री अ० क० गोपालन को ६ सितम्बर, १९५६ को भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं १४३, १४५ और १८८ के अपराधों से विमुक्त कर दिया है।

इसके पश्चात् लोकसभा मंगलवार, ११ सितम्बर, १९५६ के साढ़े दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।